बुनियादी शिक्षा का सर्वोदय दर्शन

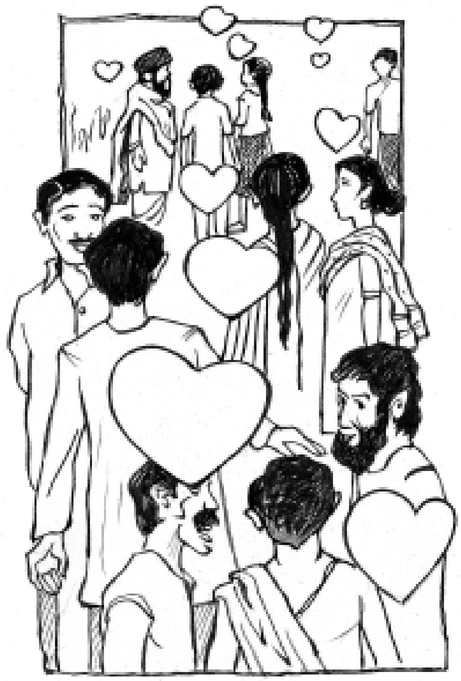
दयाल चंद्र सोनी

शिक्षा का काम केवल तरकीब या पद्धति तक सीमित नहीं है। सच्ची शिक्षा के पीछे कुछ मान्यता, श्रद्धा, विश्वास, उद्देश्य, आदर्श अथवा दर्शन भी अवश्य रहता है। शिक्षा केवल इसी में ही सीमित नहीं है कि ज्ञान–विज्ञान का प्राचीन संचय नई पीढ़ी को हस्तांतरित कर दिया जाए। शिक्षा विकास की दिशा और विकास की गति है। अतः शिक्षा एक शाश्वत पुनर्दिग्वर्तन या 'री–ओरियंटेशन' है। मनुष्य भूतकाल को कायम रखने के लिए ही नहीं जीता और न वह वर्तमान से ही संतुष्ट रहता है। बल्कि मनुष्य–जाति हमेशा भविष्य के स्वप्न में जीती है। 'भूत तो ऐसा हुआ, पर भविष्य ऐसा बनाएंगे' इस मानव–अभिलाषा में ही मनुष्य–समाज में शिक्षा या तालीम का आविर्भाव होता है। तालीम की सारी प्रेरणा इस तथ्य में निहित है कि मनुष्य–जाति अपने भविष्य को संवारना चाहती है। अतः जो तालीम किसी श्रद्धा, आदर्श एवं दर्शन को मानकर नहीं चलती, उस तालीम में से प्रेरणा तत्त्व समाप्त हो जाता है। उस शिक्षा में निष्ठा का अभाव हो जाता है। तालीम केवल शिक्षकों की आजीविका का प्रश्न नहीं है। तालीम का काम केवल इतने में ही समाप्त नहीं होता कि वर्तमान समाज के जो गुण–दोष हैं, उनकी उपेक्षा करके विद्यार्थियों को जैसे–तैसे उसी समाज के साथ अपना मेल बैठाना आ जाए, ताकि वे उस समाज में सुविधा से अपना गुजारा कर सकें। समाज के साथ हमारी भावी पीढ़ी का मेल बैठाना, यह तो शिक्षा का आधा काम ही है। शिक्षा का शेष आधा काम यह है कि विद्यार्थियों में समाज की वर्तमान बुराइयों के प्रति असंतोष जगाया जाए और उन्हें नवीन आदर्शों के लिए काम करने के लिए तैयार किया जाए। समाज में कोई स्थिर और अचल वस्तु नहीं है, बल्कि उसमें एक गति और स्पंदन है। समाज की यह नदी किसी लक्ष्य–सिंधु की ओर निरंतर बढ़ती रहती है। समाज का यह आगे बढ़ना उसकी शिक्षा व्यवस्था द्वारा संपन्न होता है। अपने को बदलने के लिए समाज पहले अपनी शिक्षा को बदलता है। कारण यह है कि मनुष्य एक अस्तित्व मात्र से संतुष्ट नहीं होता, उसके जीवन के लिए एक आदर्श भी आवश्यक है। मनुष्य का स्वभाव यह है कि जो कुछ वह आज है, उसी से उसका समाधान नहीं होता; बल्कि आज की परिस्थिति में से निकलकर कल वह कुछ और बनना चाहता है और उसमें भी एक विशेषता यह है कि जो कुछ मनुष्य आज नहीं कर पाया है, उसे भावी पीढ़ी के माध्यम से पूर्ण करना चाहता है और इसी में से शिक्षा का जन्म होता है। इस दृष्टि से सामाजिक उत्क्रांति या मानव–विकास का नाम ही शिक्षा है। शिक्षा का दर्शन से घनिष्ठ संबंध है और किसी भी शिक्षा–योजना को समझने के लिए उसके पीछे जो जीवन–दर्शन है, उसे समझना बहुत ही आवश्यक है।

स्पष्ट है कि जो शिक्षा–योजना गांधीजी के मस्तिष्क में से निकली, उसका जीवन–दर्शन वही हो सकता है, जो गांधीजी का जीवन–दर्शन था। अतः यदि हम बुनियादी शिक्षा को भली प्रकार समझना चाहते हैं, तो हमें गांधीजी के जीवन–दर्शन को समझना होगा और यह भी देखना होगा कि

गांधीजी ने इस दर्शन को बुनियादी शिक्षा योजना में किस प्रकार चरितार्थ किया है। बुनियादी शिक्षा को इस प्रकार जब हम उसके दर्शन के संदर्भ में समझेंगे, तभी हम उसे यथार्थ रूप में समझ सकेंगे।

यह बात सर्वविदित है कि गांधीजी का सारा दर्शन सत्य और अहिंसा में से ही निकला था। सर्वोदय, सत्य और अहिंसा से निकलनेवाले इस दर्शन का ही नाम सर्वोदय है। गांधीजी ने या उनके अनुयायियों ने कभी यह पसंद नहीं किया कि गांधीवाद के नाम से कोई वाद चलाया जाए। इसका कारण यह है कि गांधीजी ने सत्य और अहिंसा पर जो बल दिया और उसका जो प्रयोग किया, तो वे ऐसा नहीं मानते थे कि सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का कुछ उन्होंने ही नया आविष्कार किया हो। सत्य और अहिंसा के दोनों सिद्धांत बहुत ही प्राचीन हैं। इसी प्रकार सर्वोदय नाम चाहे नया हो, पर विचार नया नहीं है। स्वयं गांधीजी को यह नाम रस्किन की एक किताब 'अन टू दिस लास्ट' से सूझा था और रस्किन ने भी जो विचार प्रस्तुत किया था, वह बाइबिल की एक कहानी पर से आया था, जिसमें एक बगीचे का मालिक अपने उस मजदूर को भी, जो कि शाम होते–होते ही काम पर लगाया गया था, उतनी ही मजदूरी चुकाता है, जितनी कि वह उस मजदूर को देता है, जिसे उसने उस दिन सुबह से काम पर लगाया था। इस पर दूसरे मजदूर आपत्ति अवश्य करते हैं, पर वह मालिक उनकी आपत्ति पर कोई ध्यान नहीं देता और ऐसा महसूस करता है कि इस अंतिम मजदूर को भी भरपेट भोजन पाने का हक है, और कम समय तक काम प्राप्त होने के कारण यदि किसी को कम भोजन मिलता है, तो यह समाज की, मनुष्यता की कमी है। दर्शन वास्तव में चीज ही ऐसी है कि यदि वह सच्चा है, तो वह नया या पुराना नहीं हो सकता। सच्चा



दर्शन वह है, जो कि सनातन है। उस सनातन दर्शन की व्याख्या और प्रयोग देश–कालानुसार नया–नया हो सकता है, पर जो मूल सिद्धांत है, वह नया या पुराना नहीं हो सकता है। अतः सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को हम गांधीजी की विचारधारा के अनुसार अपनी आज की समस्याओं के साथ समझ तो अवश्य सकते हैं, पर सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को नया नहीं कह सकते और न यह कह सकते हैं कि ये सिद्धांत गांधीजी के नए आविष्कार थे।

यह स्थान उसके लिए उपयुक्त नहीं है कि हम सत्य और अहिंसा की विशद व्याख्या करते हुए सर्वोदयी दर्शन को विस्तार से समझने का प्रयत्न करें, क्योंकि इस विषय पर तो किसी उपयुक्त और अधिकारी विद्वान द्वारा अलग से ग्रंथ ही लिखा जाना उचित हो सकता है। फिर भी यहां हम संक्षेप में सत्य, अहिंसा और सर्वोदय पर कुछ प्रकाश डालेंगे, ताकि हम यह देख सकें कि

बुनियादी शिक्षा की योजना में गांधीजी ने उन सिद्धांतों को किस प्रकार चरितार्थ करने की कोशिश की है।

गांधीजी के अनुसार सत्य वह मूल अगोचर धातु, द्रव्य या तत्त्व है, जिससे यह समस्त ब्रह्मांड, जो विविध और विभिन्न प्रतीत होता है, बना हुआ है। जो कुछ हमें विभक्त रूप से इस सृष्टि में दिखाई देता है, उस सबकी तह या जड़ में एक ही अविभक्त और सर्वव्यापी तत्त्व है, जिसे सत्य (अर्थात् टिकने वाला) या परमात्मा कहा गया है। इस ज्ञानरूपी प्रकाश की प्राप्ति ही जीवन का मूल प्रयोजन है और इसी में जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ, सबसे बड़ा आनंद, सबसे बड़ा लाभ और सबसे बड़ी सिद्धि है। इस सत्यरूपी परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रत्यक्ष और रामबाण उपाय अहिंसा है, क्योंकि हिंसा तभी बरती जा सकती है, जबकि हम यह मानें कि हम दूसरों से भिन्न हैं। जो अपने साथी या दुश्मन में भी अपने को ही देखेगा, वह अवसर पड़ने पर अपने साथी या दुश्मन को सताने के बदले स्वयं ही कष्ट झेलना सुविधा की बात समझेगा। सत्य का मतलब यदि यह है कि 'मैं', 'तू' और 'वह' ये तीनों तत्त्वतः एक ही हैं, तो उसका व्यावहारिक अनुभव और प्रयोग अहिंसा से ही हो सकता है। जो सत्य को जानता है, वह दूसरे के सुख में अपना सुख, दूसरे के दुःख में अपना दुःख, दूसरे से प्रेम करने में अपने प्रति प्रेम, दूसरे के लाभ में अपना लाभ और दूसरे की सेवा में अपनी सेवा समझेगा और यही अहिंसा या प्रेम है। सृष्टि की मौलिक एकता एक सूक्ष्म और अगोचर तथ्य है, परंतु अहिंसा द्वारा हम उसे प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु बना सकते हैं। वास्तव में सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, और सत्य को जो मानता है, वह अहिंसा को मानने से इनकार नहीं कर सकता। तमाम धर्मों में अहिंसा को ही सार बताया गया है। जहां ईसा का उपदेश यह है कि दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करो, जैसा कि तुम अपने लिए चाहते हो, वहां भारतीय शास्त्रों में भी यह कहा गया है कि जिसे अपने प्रतिकूल मानो, वैसा आचरण दूसरों के प्रति मत करो, यही धर्म का सार है।

अहिंसा और प्रेम के इस सिद्धांत से यह दुनिया पहले भी अपरिचित तो नहीं थी, पर अभी तक प्रेम का व्यवहार केवल अपनों के प्रति ही होता आया था। गांधीजी ने प्रेम या अहिंसा को दुश्मनों से युद्ध करने में काम में लेकर एक नया चमत्कार कर दिखाया। यह उनकी एक महान् देन रही है। गांधीजी का कहना था कि दुश्मन में भी यही एक सत्य रम रहा है और इसलिए मित्र या शत्रु, कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसके प्रति अहिंसा या प्रेम का व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। अतः उनका मत था कि समाज में हिंसा और भय के बजाय प्रेम का शासन होना चाहिए और यह प्रेम किसी जाति या राष्ट्र के घेरे में सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रत्येक अदना से अदना और कमजोर से कमजोर तक और जो दुश्मन है, उस तक भी पहुंचना चाहिए। प्रेम और एकता के इस घेरे में कोई भी बाहर न रहे और सबमें सत्य का अंश स्वीकार किया जाए। कुछ ही लोगों का सुख अभीष्ट न हो। न बहुतायत का सुख ही अभीष्ट हो। बल्कि सभी लोगों का सुख अभीष्ट हो। कुछ ही लोगों की उन्नति अभीष्ट न हो, न बहुमतवालों की उन्नति तक ही सीमित रहा जाए; बल्कि सबकी उन्नति अभीष्ट हो और सबके उदय का प्रयत्न किया जाए, सबको प्रेम और ममता प्राप्त हो। इसी को चाहे सत्य और अहिंसा का नाम दीजिए, चाहे सर्वोदय का नाम दीजिए, बात एक ही है।

सर्वोदय के मूल में महज सब व्यक्तियों की समानता का ही सिद्धांत नहीं है, जो कि जनतंत्र का वर्तमान सिद्धांत है। जब सब मनुष्यों को केवल समानता का दर्जा देकर बात समाप्त कर दी जाती है, तब ही तो जनतंत्र का वर्तमान बहुमतीय शासन कायम होता है, जिसमें 51 की राय को 49 की राय के

मुकाबले में विजय प्राप्त हो जाती है। जब सब लोग समान हैं, तो गणित के अनुसार 49 की तुलना में 51 को अवश्य ही विजय होना चाहिए। पर सर्वोदय समानता के सिद्धांत से एक कदम आगे बढ़कर यह कहता है कि सब व्यक्ति केवल समान ही नहीं हैं, सभी व्यक्ति एक भी हैं। 'मैं', 'तू' और 'वह' ये तीनों निःसंदेह समान हैं, पर वे समान ही नहीं हैं; बल्कि तत्त्वतः ये तीनों एक भी हैं। अतः सर्वोदय 49 की तुलना में 51 को महत्त्व देकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता, जो कि जनतंत्र और बहुमत का सिद्धांत है। कहा गया है कि बहुमत तो प्रायः मूर्खों का होता है और दानाई तो कई बार बहुत अल्पमत में पायी जाती है। इसलिए बहुमत को हम हमेशा सही नहीं मान सकते। अतः सर्वोदय का सिद्धांत जहां तक मैं समझता हूं, यह है कि एक, निन्यानबे और सौ ये तीनों ही समान हैं। (1=99=100)। सर्वोदय वह मंजिल है, जहां व्यष्टि और समष्टि की समस्या समाप्त हो जाती है। मैं समझता हूं कि सर्वोदय के लिए उपनिषदों में बहुत प्राचीन काल में ही आधार बन चुका था। उपनिषद् में लिखा है :

ओउम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
(ईशोपनिषद्)

अर्थात् वह (ईश्वर) पूर्ण है और यह (जगत्) पूर्ण है तथा पूर्ण से ही पूर्ण प्रकट होता है। पूर्ण में से जब पूर्ण निकाल लिया जाता है, तो जो शेष रहता या बचता है, वह भी पूर्ण ही है। उपनिषद् के इस प्राचीन और प्रामाणिक वचन के अनुसार तत्त्वतः एक, निन्यानबे और सौ में कोई भेद नहीं है। यही सर्वोदय का दर्शन है।

वास्तव में सर्वोदय को जनतंत्र की आगे की मंजिल या जनतंत्र का संशोधित रूप माना जाना चाहिए। हम देखते हैं कि जिस जनतंत्र का हमने बड़ी अभिलाषा से स्वागत किया था, आज जनता उससे असंतुष्ट है। चाहे अपने देश के बाहर, हम शेष दुनिया को भी क्यों न देखें, हम यह पाएंगे कि जनतंत्र ने दुनिया की बहुत–सी समस्याएं हल करके भी बहुत–सी समस्याओं को अभी अनसुलझी ही छोड़ रखा है और हम यह कह सकते हैं कि बहुमत की प्रणाली से मानव समस्याओं के हल के मार्ग पर, हम बहुत दूर तक नहीं जा पाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सबको समान मात्र माना जाए या चाहे न माना जाए, पर सबको एक मानना उससे भी अधिक आवश्यक है। आज की समस्याएं इस तरह हल होंगी कि जब दो व्यक्ति या दो समूह मिलें, तो वे आपस में यह कह सकें कि मुझमें तू है और तुझमें मैं हूं। पृथक्ता की भावना को समाप्त करने की आवश्यकता है, क्योंकि पृथक्ता केवल ऊपरी है और सत्य यह है कि भीतर से हम सब एक ही हैं।

आज जनतंत्र तो आवश्यक है, पर पृथक्ता की भावना के कायम रहने से आम ढर्रा यह चल रहा है कि पहले अधिक–से–अधिक स्वयं खाओ और तब दूसरे को भी इतना खिलाओ कि वह जीवित रह सके और हमारे लाभ के लिए काम करता रह सके। आज अमीर लोग ही ऐसा नहीं सोचते, गरीब लोगों का भी विचार तो ऐसा ही है, चाहे वे मजबूरी के कारण ऐसा कर सकने का मौका न पाते हों। यही कारण है कि आज समाज में भयंकर होड़ और शोषण है। इस होड़ और शोषण के कारण वर्तमान युग में महान् और आश्चर्यजनक वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद दुःख, चिंता, अभाव, द्वेष, हिंसा और शत्रुता आदि बुराइयां पूर्ववत् विद्यमान हैं, जिनसे जागतिक युद्धों की आशंका बनी रहती है; बल्कि कहना चाहिए कि कुछ सीमा तक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करके ये बुराइयां पहले से भी अधिक समर्थ बन गई हैं। जीवन–यापन के लिए मनुष्य को भी सामग्री चाहिए, आज के विज्ञान के कारण यह इतनी अधिक हो सकती है कि अभाव और गरीबी का नाम ही इस दुनिया से लुप्त हो

जाए। परंतु 'पहले मैं और पीछे तुम' वाली उपर्युक्त रूढ़ मनोवृत्ति के कारण अभाव की पूर्ति कभी नहीं हो पाती और संसार में गरीबी बढ़ती चली जाती है। आज गरीब तो अपने आपको अभावग्रस्त और दुःखी अनुभव करता ही है, पर स्थिति यह है कि अमीर भी अपने आपको संतुष्ट अनुभव नहीं करता। यह आज के संसार की मुख्य समस्या है, जिसको हल किए बिना न तो अमीर सुखी हो सकते हैं और न ही गरीब संतुष्ट हो सकते हैं। यदि विज्ञान की सहायता से संसार की समृद्धि आज से हजारगुनी बढ़ जाए और आबादी आज की तुलना में हजारगुनी कम भी हो जाए, तब भी जब तक एक इंसान दूसरे इंसान से अपने आपको समान मनाते हुए भी पृथक् मानता है और पृथक् मानकर 'पहले मैं और पीछे तुम' वाला सिद्धांत अपनाता है, तब तक दुनिया में सुख, समृद्धि एवं संतोष का साम्राज्य नहीं हो सकता। परन्तु यदि मनुष्य यह समझ ले कि तत्त्वतः हम सब एक हैं और सुख–शांति का रहस्य भौतिक समृद्धि एवं उसके साधनों में उतना नहीं है, जितना उपलब्ध भौतिक समृद्धि और उसके साधनों को सब लोगों के बीच भली प्रकार बांट देने में हैं, तो मनुष्य जाति प्रत्येक अवस्था में सुखी रह सकती है। यह बंटवारा जोर और जुल्म या हिंसा से संभव नहीं है, क्योंकि यदि एक बार जोर और हिंसा से यदि ऐसा बंटवारा हो भी गया, तो जब तक प्रकृति एक मनुष्य को दूसरे की तुलना में शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से असमान शक्ति देकर पैदा करती रहती है, तब तक वह जबर्दस्ती की समानता निभ नहीं सकती। अतः समानता, सुख और समृद्धि तो अहिंसा, प्रेम और आंतरिक स्वेच्छा से ही उत्पन्न हो सकती है। निःसंदेह मनुष्य के आज तक के इतिहास में हिंसा बहुत रही है और मनुष्य के मन में अपने इस इतिहास के कारण यह बात रूढ़ हो गई है कि डंडे के जोर के आगे तो गलत बात भी मान लेना और डंडे का जोर जहां न हो, वहां सही बात भी न मानना। परंतु यदि मनुष्य को अहिंसक तरीके से बरता जाए, तो धीरे–धीरे दीर्घकाल में उस पर ऐसा संस्कार डाला जा सकता है कि वह हिंसा के आगे गलत बात को न माने और अहिंसा के आगे सही बात को मान ले। इस परिवर्तन में निःसंदेह देर लगेगी, पर सच्चा और स्थायी परिवर्तन यदि होगा, तो इसी प्रकार होगा, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मनुष्य–जाति यदि आज थोड़ी–बहुत भी सभ्य मानी जा सकती है, तो उसके पीछे वास्तविक कारण यह नहीं कि मनुष्य को डंडे के जोर से सभ्य बनाया गया है, बल्कि उसका मुख्य कारण यह है कि अनगनित प्रेमभरे हृदयों ने समय–समय पर प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने के लिए अपनी क़ुरबानी दी है।

सर्वोदय के तीन व्यावहारिक रूप

सर्वोदय की उपर्युक्त भूमिका को यदि हम स्वीकार करें, तो सत्य और अहिंसा का व्यावहारिक प्रश्न यह बन जाता है कि समाज में आज जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का और एक समूह द्वारा दूसरे समूह का शोषण चल रहा है, उसका निराकरण कैसे हो, किस प्रकार उपलब्ध भौतिक समृद्धि के साधनों का सब लोगों में बिना किसी हिंसा और जोर–जुल्म के बंटवारा हो। इसका उत्तर यह होता है कि प्रथम तो जिन उद्योगों से मनुष्य की मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उनका ऐसा विकेंद्रीकरण होना चाहिए कि किसी मनुष्य या किसी गांव के इनके विषय में किसी के आगे मजबूर या लाचार न होना पड़े और लगभग सभी मनुष्यों को रचनात्मक काम से प्राप्त होने वाला आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक लाभ प्राप्त हो।

इसका दूसरा उत्तर यह होता है कि समाज में किसी भी काम को करने के लिए जो साधन काम में लिया जाए, वह शुद्ध और नैतिक होना चाहिए। अच्छे और नैतिक उद्देश्य के लिए भी साधन अशुद्ध या अनैतिक नहीं होना चाहिए।

इसका तीसरा उत्तर यह है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच जो असमानता है, उसे मिटाने और समानता उत्पन्न करने के लिए सम्पन्न लोगों को सताया नहीं जाना चाहिए, बल्कि उनकी मानवता को जगाया जाना चाहिए और उनको स्वेच्छा से दान देने और दूसरों को अपने बराबर लाने के लिए प्रेम के द्वारा समझाया जाना चाहिए। इस प्रकार समाज में एक ऐसी हवा बन सकती है, जो सर्वोदय के लिए बहुत अनुकूल हो। यहां कुछ लोग यह कहेंगे कि यह सब मनुष्य की प्रकृति के विपरीत और असंभाव्य है। यहां यह भी कहा जाएगा कि आज जबकि विज्ञान की इतनी उन्नति हो गई है, वेकेंद्रित उद्योगों की सिफारिश करना बड़ी नादानी की बात है। ये प्रश्न गांधीजी को कई बार पूछे गए थे और कई बार गांधीजी तथा उनके अनुयायियों ने इनका यथेष्ट उत्तर भी दिया। यहां संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रेम और बलिदान के साथ जब कोई संत या महापुरुष मनुष्यों को त्याग और दान की शिक्षा देता है, तो जनता कभी उस संत या महापुरुष को निराश नहीं करती। पर जब डंडे के बल पर सबल लोगों को या धनाढ्यों को यह कहा जाता है कि तुम्हें निर्बलों और निर्धनों के लिए त्याग करना ही पड़ेगा, वरना तुम सजा पाओगे, तो इससे उन लोगों के मानस में सहज ही एक प्रतिरोध की भावना घर कर लेती है, जिससे प्रथम तो वे चोरी–छिपे उस कानून और जबर्दस्ती से बचने का प्रयत्न करते हैं और यदि नहीं बच पाते हैं, तो भी निर्बलों और निर्धनों के लिए उनका हृदय–परिवर्तन नहीं हो पाता और इसलिए अवसर पाते ही धनी और सबल लोग निर्धनों और निर्बलों पर फिर हावी हो जाते हैं।

अस्तु यह कहना गलत है कि मानव प्रकृति अहिंसक साधनों से अथवा प्रेम और बलिदान के उपायों से प्रभावित नहीं होती। वास्तव में, बात तो यह है कि मनुष्य अपने इतिहास में डंडे के जोर से इतना अधिक हांका गया है कि उसे यह सूझता ही नहीं कि उसे प्रेमपूर्ण व्यवहार से भी प्रभावित होना चाहिए। अब तो दूसरा प्रश्न है कि आज की वैज्ञानिक प्रगति के युग में ये विकेंद्रित उद्योग (चरखे और तकली) कहां तक काम देंगे और कहां तक ठहर सकेंगे। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हमें विज्ञान की दिशा बदलनी होगी। आज तक विज्ञान का प्रयत्न यह रहा है कि केंद्रित और भीमकाय उद्योगों के लिए यंत्रों का आविष्कार किया जाए। विज्ञान की सहायता से ऐसे उत्पादक यंत्रों का आविष्कार करना होगा और उन यंत्रों में 'परफेक्शन' लाना होगा, जिनकी मदद से व्यक्ति अथवा छोटे समुदाय स्वावलंबन के आधार पर अपनी मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। विज्ञान का कोई अंत नहीं है कि हम यह मान लें कि जो कुछ विज्ञान ने आज कर दिखाया है, उससे अधिक विज्ञान कुछ भी नहीं कर सकता। भविष्य का विज्ञान इस बात पर ध्यान देगा कि ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया जाए, जो व्यक्ति और छोटे समुदाय या गांव को सशक्त और स्वाधीन बना सके। इसलिए सर्वोदय के विषय में निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

दयाल चंद्र सोनी : विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक रहे (1941 में) और बुनियादी शिक्षा को लेकर कार्य किया। उनकी पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे' से यह आलेख साभार लिया गया है।